

1857 की क्रान्ति का ब्रिटिशकालीन भारत पर प्रभाव : एक ऐतिहासिक अध्ययन

संगीता यादव*

सार—संक्षेप

1857 का संग्राम ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक बड़ी और अहम घटना थी। 1857 के आते-आते भारत के आवागमन का सब्र टूटने लगा। लगातार वर्षों से पल रहा असंतोष अन्त में पूरे देश में सशस्त्र महाविद्रोह के रूप में फूट पड़ा। इस क्रान्तिकारी युद्ध ने अंग्रेजी हुकूमत को हिलाकर रख दिया। 5 सितम्बर 1857 को अर्नेस्ट जोन्स ने लिखा कि हिन्दुस्तान के विद्रोह के बारे में सारे देश में एक ही राय होनी चाहिए। विश्व में जितने भी विद्रोह हुए, उनमें सबसे ज्यादा न्यायपूर्ण, भद्र और आवश्यक विद्रोह है। यह भारत पर अधिकार करने वाले अंग्रेजों के खिलाफ राष्ट्रीय घोषणा, धार्मिक उग्रता और सैनिकों की शिकायत का संयुक्त रूप था। देशी राजा नवाब और देशी सिपाही इसमें शामिल हुए थे। मुसलमान और हिन्दुओं ने अपनी पुरानी धार्मिक घृणा भूलकर ईसाइयों के खिलाफ हाथ मिलाया था। घृणा और आतंक उस महान विद्रोही आन्दोलन के प्रेरक थे।

परिचय

1857 ई० का स्वतंत्रता संग्राम आधुनिक भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। इस घटना से ठीक सौ वर्ष पहले बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला की प्लासी के युद्ध में पराजय के बाद भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी या अंग्रेजी सरकार का प्रभावी नियंत्रण हो गया। परन्तु भारतीयों ने उसे कभी दिल से स्वीकार नहीं किया। उन्हें शुरू से ही देश के अलग-अलग सुदूर भागों से सन्यासियों, किसानों, मजदूरों, कारीगरों, सैनिकों, सामन्तों, साहूकारों, गरीबों, अमीरों द्वारा अलग-अलग मगर निरन्तर चुनौतियाँ मिलती रही। सन्यासी विद्रोह, अफीम किसानों का विद्रोह, नमक कारीगरों का विद्रोह, चरो विद्रोह, भील विद्रोह, चकमा विद्रोह आदि शृंखला के माध्यम से जब तक भारतीय अंग्रेज हुकूमत द्वारा भारतीय उद्योग धन्धों तथा व्यापार के योजनाबद्ध लूट, शोषण और विनाश की नीति के विरुद्ध आजादी की तड़प को सदैव प्रदर्शित करते रहे।

बंगाल में नया अंग्रेजी राज्य स्थापित हो जाने के बाद जमींदार, कृषक तथा शिल्पी सभी बर्बाद हो गये। सन् 1770 ई० में भयंकर अकाल पड़ा। इस

अकाल को तथा कम्पनी के पदाधिकारियों की कठोरता को लोगों ने विदेशी राज्य की देन समझा। तीर्थ स्थानों पर आने जाने से लगे प्रतिबन्धों से सन्यासी लोग क्षुब्ध हुए। सन्यासियों की अन्याय के विरुद्ध लड़ने की परम्परा थी और इन्होंने जनता से मिलकर कम्पनी की कोठियों और कोषों पर आक्रमण किये। ये लोग कम्पनी के सैनिकों से वीरता से लड़े। वारेन हेस्टिंग्स एक लम्बे अभियान के पश्चात् ही इस विद्रोह को दबा पाया। इस विद्रोह का सारा विवरण वन्देमातरम् के रचयिता बंकिम चन्द्र चटर्जी ने अपने उपन्यास 'आनन्दमठ' में किया है।

लेकिन अंग्रेज सरकार द्वारा की जा रही इस निर्वाध लूट एवं दमन पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और ये जारी रही। सिराजुद्दौला के समय से ही बंगाल के अन्दर कम्पनी का निरन्तर यही प्रयास रहा कि देश का समस्त व्यापार कम्पनी के अधिकार में आ जाये। एक प्रसिद्ध अंग्रेज वोट्ट्स जिसकी पुस्तक, प्लासी के केवल कुछ वर्ष पश्चात् प्रकाशित हुई ने लिखा है, "इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए देश के कारीगरों और मजदूरों के साथ इतने अन्याय और अत्याचार किये गये जिनका अनुमान तक नहीं किया जा सकता।" वास्तव में इन मजदूरों और कारीगरों के ऊपर कम्पनी ने इस तरह अपना अधिकार जमा रखा है कि वो कम्पनी के खरीदे हुए गुलाम हो। कपड़ा बुनने वालों को सताने के अनेक असंख्य तरीके हैं, और देश के अन्दर कम्पनी के एजेन्ट और गुमाश्ते इन तरीकों का उपयोग करते रहते हैं। उदाहरण के लिए जुर्माना करना, कैद कर देना, कोड़े मारना, जबर्दस्ती इकरारनामे लिखवा लेना आदि। इसके फलस्वरूप देश में कपड़े बुनने वालों की संख्या में भारी कमी आयी। इसी पुस्तक में लेखक ने एक और वर्णन किया है, कि कम्पनी के गुमाश्ते माल के लिए रैय्यत को इस प्रकार परेशान करते हैं कि वे अपनी भूमि को ठीक रखने और सरकारी लगान तक देने में असमर्थ हो जाते थे, दूसरी ओर लगान वसूल करने वाले अफसर उन्हें लगान देने के लिये शारीरिक यातनाएँ तक देते थे और अनेक बार ऐसा हुआ कि लगान देने के लिए या तो वे अपने बच्चों को बेच डाले या गाँव से पलायन कर जाये।

हरबर्ट स्पेन्सर ने लिखा है कि "उन लोगों के कारनामे कितने काले रहे होंगे कि जब कम्पनी के डायरेक्टरों ने इस बात को स्वीकारा कि भारत के आन्तरिक व्यापार से जो असंख्य धन कमाया गया है", वह सब तरह के घोर अन्यायों और अत्याचारों द्वारा प्राप्त किया गया जिससे बढ़कर अन्याय और अत्याचार कभी किसी देश में नहीं हुआ होगा। 1784 में ब्रिटिश सांसद विलियम क्लार्टन ने लिखा है कि "पुराने जमाने में बंगाल के देहात अन्न के भण्डार थे। पूर्व में यह प्रदेश तैयार माल, व्यापार और दौलत का खजाना था, लेकिन हमारे भ्रष्ट शासन ने इतने जोश में काम किया कि 20 साल के अन्तराल में देहात के बहुत से इलाके वीरान हो गये। खेत

*द्वारा— राजेन्द्र यादव, ग्राम—हीरपुर, पो.— जंदाहा, जिला—वैशाली (बिहार)

बोये नहीं जाते, बहुत-सी जमीनों पर झाड़ियाँ उग आई हैं, किसानों को लूटा जाता है, कारीगरों को सताया जाता है, लोगों को बार-बार अकाल का सामना करना पड़ता है और आबादी का मिटना शुरू हो गया है।”

1857 के आते-आते भारत के आवाम का सब्र टूटने लगा। लगातार वर्षों से पल रहा असंतोष अन्त में पूरे देश में सशस्त्र महाविद्रोह के रूप में फूट पड़ा। इस क्रान्तिकारी युद्ध ने अंग्रेजी हुकूमत को हिलाकर रख दिया। 5 सितम्बर 1857 को अर्नेस्ट जोन्स ने लिखा कि हिन्दुस्तान के विद्रोह के बारे में सारे देश में एक ही राय होनी चाहिए। विश्व में जितने भी विद्रोह हुए, उनमें सबसे ज्यादा न्यायपूर्ण, भद्र और आवश्यक विद्रोह है। इतिहासकार जस्टिन मैकार्थर्ट ने लिखा है कि सच्चाई यह थी कि भारतीय प्रायदीप के उत्तरी और उत्तर-पश्चिम प्रदेशों के अधिकांश हिस्सों में अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध भारतवासियों ने विद्रोह किया था। सिर्फ सिपाहियों ने ही विद्रोह नहीं किया। यह किसी भी तरह सिपाही विद्रोह नहीं था। यह भारत पर अधिकार करने वाले अंग्रेजों के खिलाफ राष्ट्रीय घोषणा, धार्मिक उग्रता और सैनिकों की शिकायत का संयुक्त रूप था। देशी राजा नवाब और देशी सिपाही इसमें शामिल हुए थे। मुसलमान और हिन्दुओं ने अपनी पुरानी धार्मिक घृणा भूलकर ईसाइयों के खिलाफ हाथ मिलाया था। घृणा और आतंक उस महान विद्रोही आन्दोलन के प्रेरक थे। चर्बी लगे कारतूसों का विवाद सारी बारूद पर आ गिरा जो एक चिंगारी के समान था। अगर इस चिंगारी ने आग न लगाई होती तो किसी दूसरे ने यह काम कर दिया होता। मेरठ के लोगों ने एक क्षण में एक नेता, एक झण्डा और एक उद्देश्य प्राप्त कर लिया और बगावत के क्रान्ति युद्ध का रूप धारण कर लिया। जब वे बिना बाधा सुबह ही रोशनी में चमकती जमुना के किनारे पहुँचे..... उन्होंने अनजाने ही इतिहास का एक संकटग्रस्त क्षण प्राप्त कर लिया और सिपाही विद्रोह को राष्ट्रीय और धार्मिक युद्ध में बदल दिया। अकाल तथा बढ़े हुए भूमिकर व अन्य आर्थिक संकटों के कारण मिदनापुर जिले की आदिम जाति के चुआर लोगों ने हथियार उठा लिए। दलभूम कैलापाल, ढोटका तथा बाराभूम के राजाओं ने मिलकर 1768 ई० में विद्रोह कर दिया व आत्मविनाश की नीति का अनुशरण किया, और यह प्रदेश 18वीं सदी के अन्त तक उपद्रव ग्रस्त रहा। इसी प्रकार छोटा नागपुर व सिंहभूम जिले के हो तथा मुण्डा लोगों ने भी 1820-22 तक व पुनः 1831 ई० में कम्पनी की सेना से टक्कर ली और यह प्रदेश 1837 ई० तक उपद्रवग्रस्त रहा।

छोटा नागपुर के कोलों ने अपना क्रोध उस समय प्रकट किया जब उनकी भूमि उनके मुखिया मुण्डों से छीनकर मुस्लिम कृषकों तथा सिक्खों को दे दी। यह विद्रोह रांची, सिंहभूम, हजारीबाग, पलामऊ व मानभूम के पश्चिमी क्षेत्रों में फैल

गया। हजारों आदिवासियों के कत्ल करने के बाद ही ब्रिटिश शासन यहाँ पर सत्ता सीन हो सका। राजमहल जिले के सथाल लोगों ने भूमिकर अधिकारियों के हाथों दुर्व्यवहार पुलिस के दमन तथा जमींदारों तथा साहूकारों की वसूलियों के विरुद्ध अपना रोष प्रकट किया। इन्होंने सिधू तथा कान्हू के नेतृत्व में कम्पनी के शासन का अन्त करने की घोषणा कर दी, तथा अपने आपको स्वतन्त्र घोषित कर दिया। 1856 में बड़ी मुश्किल से यहाँ की स्थिति काबू में आयी। सरकार ने इन लोगों के लिए पृथक सथाल परगना बनाकर शान्ति स्थापित की।

असम के अहोम लोगों ने कम्पनी पर वर्मा युद्ध के पश्चात् लौटने का वचन पूरा न करने का आरोप लगाया। जब अंग्रेजों ने अहोम प्रदेश को अपने प्रदेशों में मिलाने का प्रयास किया तो विद्रोह फूट पड़ा। 1826 ई० में अहोम लोगों ने गोमधर कुँवर को अपना राजा घोषित कर दिया तथा रंगपुर पर चढ़ाई करने की योजना बनायी। कम्पनी अपनी सैन्य शक्ति के कारण ही इसे दबा पायी। 1830 में दूसरे विद्रोह की योजना बनी। कम्पनी ने इसपर शान्तिमय नीति अपनाई और उत्तरी असम के प्रदेश महाराज पुरन्दर सिंह को दे दिए तथा कुछ अन्य क्षेत्र भी इन्हें दे दिये। कम्पनी ने पूर्वी दिशा में जैन्तिया तथा पश्चिम में गारो पहाड़ियों के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। अंग्रेजों ने ब्रह्मपुत्र घाटी तथा सिलहट को जोड़ने के लिए एक सैनिक मार्ग की योजना भी बनाई तथा इसके लिए बहुत से अंग्रेज, बंगाली तथा अन्य लोग वहाँ भेजे। ननकलो के राजा तीरत सिंह ने इस हस्तक्षेप का विरोध किया तथा गारो खाम्पटी तथा सिंहयों लोगों की सहायता से विदेशी लोगों को निकालने का प्रयास किया गया। शीघ्र ही इसने अंग्रेज विरोधी आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। 1833 में अंग्रेज इस आन्दोलन को सैनिक शक्ति से दबा पाये।

पश्चिमी भारत में विद्रोह :

भीलों की आदिम जाति पश्चिमी तट के खानदेश जिले में रहती थी। (1812-19) तक इन लोगों ने अपने नये स्वामी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। कम्पनी के अधिकारियों का विचार था कि इस विद्रोह को पेशवा बाजीराव द्वितीय तथा उसके प्रतिनिधि त्रिम्बकजी दांगलिया ने प्रोत्साहित किया था। कृषि सम्बन्धित कष्ट व नई सरकार भय ही इस विद्रोह के उदय का कारण था। इस विद्रोह को दबाने में अंग्रेजों की सेना लगी रही, परन्तु भयभीत होने के स्थान पर भीलों की उत्तेजना और भी बढ़ गई। जब भीलों को ज्ञात हुआ कि वर्मा में अंग्रेज पराजित हो गये हैं तो उन्होंने 1825 ई० में सेवकराम के नेतृत्व में पुनः विद्रोह कर दिया। 1831 ई० व 1846 ई० में पुनः विद्रोह हुए थे, जिससे ज्ञात होता है कि यह आन्दोलन भी लोकप्रिय था। अंग्रेजों से कोल भी भीलों की तरह अप्रसन्न थे, क्योंकि अंग्रेजों ने कोलों के दुर्ग तोड़ दिये थे। दूसरे अंग्रेज शासन में उनमें बेकारी बढ़ गई थी इसलिए

इन्होंने 1829, 1839, 1844 व 1848 ई० में विद्रोह किये थे जो सब के सब दबा दिये गये थे।

कच्छ तथा काठियावाड़ में भी अंग्रेजों के विरुद्ध रोष फैल गया था। क्योंकि 1819 ई० में कच्छ के राजा भारमल्ल को पराजित करके अंग्रेजों ने उसके अल्पवयस्क पुत्र को सिंहासन पर बैठा दिया और प्रदेश का वास्तविक शासक जिसका निर्देशन एक अंग्रेज रेजीडेंट के अधीन था। इस परिषद् द्वारा किये गये परिवर्तनों तथा अत्यधिक भूमिकर लगने के कारण लोगों में अत्यधिक रोष था। वर्मा युद्ध में अंग्रेजों की पराजय के कारण विद्रोहियों को प्रेरणा मिली कि भारमल्ल के शासन को पुनः स्थापित किया जाये। अंग्रेजों को चिरकाल तक सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी। 1831 ई० में पुनः विद्रोह हुआ। अन्त में कम्पनी को अनुरंजन की नीति अपनानी पड़ी। ओखा मण्डल के बघेरे शुरु से ही विदेशी शासन के विरोधी थे। जब बड़ौदा के गायकवाड़ों ने अंग्रेजी सेना की सहायता से इन लोगों से अधिक कर प्राप्त करने का प्रयास किया तो बघेरा सरदारों ने सशस्त्र विद्रोह कर दिया और 1818-19 के बीच अंग्रेजी प्रदेश पर भी आक्रमण किया। अन्त में काफी प्रयास के बाद 1820 में शान्ति स्थापित हो पायी।

सूरत नगर ने शुरु से ही अप्रिय कार्यों का विरोध किया है। 1844 में नमक कर 1/2 रू० प्रति मन से बढ़कर एक रूपया प्रति मन कर दिया गया, जिसके कारण लोगों में असंतोष फैल गया और जल्द ही सरकार विरोधी भावना अंग्रेज विरोधी भावना बन गई। कुछ यूरोपीय लोगों पर प्रहार भी हुए। जब अंग्रेजों को लगा कि यह विद्रोह इतना अधिक है तो उन्होंने अतिरिक्त कर हटा लिया। इस प्रकार सरकार ने एक मानक नाप और तौल लागू करने का प्रयत्न किया तो लोगों ने दृढ़ता के साथ उसका बहिष्कार किया और सत्याग्रह किया। अन्त में इसे वापिस लेना पड़ा। पश्चिमी घाट में रहने वाली एक आदिम जाति रमोसी जो अंग्रेजी प्रशासन व पद्धति की घोर विरोधी थी। जिसके सरदार चतर सिंह ने 1822 ई० में विद्रोह कर दिया, और सतारा के आस-पास का प्रदेश लूट लिया। 1825-26 ई० में पुनः उपद्रव हुआ। इस क्षेत्र में 1829 ई० तक अशान्ति बनी रही।

सितम्बर 1839 ई० में सतारा के राजा प्रताप सिंह को सिंहासन से पदच्युत व देश निष्कासन कर दिया तो समस्त प्रदेश में असंतोष फैल गया और 1840-41 में यहाँ पर बहुत अधिक दंगे हुए। नरसिंह दत्तात्रेय पेतकर ने अपनी सेना एकत्र करके बादामी का दुर्ग जीत करके सतारा नरेश प्रताप सिंह का ध्वज फहरा दिया। शक्तिशाली अंग्रेज सेना ही यहाँ पर शान्ति स्थापित कर सकी। कोल्हापुर में 1844 ई. में प्रशासनिक सुधार होने से असंतोष फैल गया। गाडकारी-वंशानुगत सैनिक जाति थी जो मराठों के दुर्गों में, सैनिकों के रूप में काम करती थी। इनकी छटनी

कर दी गई। बेकारी का गम्भीर संकट आने पर गाडकारियों ने विद्रोह कर दिया। सम्मनगढ़ व भूदरगढ़ के दुर्ग जीत लिए गये। इसी तरह सामन्तवाड़ी में भी विद्रोह हुआ। अधिक सैनिक शक्ति के कारण ही अंग्रेज इन विद्रोहों को दबाने में सफल रहे।

दक्षिणी भारत में भी विद्रोह हुए। विजय नगर में 1765 ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी को उत्तरी जिले प्राप्त करने के पश्चात् उस प्रदेश में कठोरता से कार्य किया। 1798 में कम्पनी ने राजा को अपनी सेना भंग करने को कहा और तीन लाख रूपये की भेंट देने को विवश किया। जब यह सब राजा ने स्वीकार नहीं किया तो कम्पनी ने उसकी जागीर जब्त कर ली। इस पर राजा ने विद्रोह कर दिया, इस विद्रोह में प्रजा तथा सेना ने राजा का साथ दिया। लेकिन इस विद्रोह में राजा को वीरगति प्राप्त हुई। कम्पनी ने राजा के बड़े पुत्र को जागीर वापस दे दी तथा धन की माँग में भी कमी कर दी। अंग्रेजों की भूमिकर व्यवस्था के विरुद्ध डिंडीगुल तथा मालबार के पालीगार लोगों ने विद्रोह कर दिया। मद्रास प्रेजीडेंसी में 1856 ई० तक पालीगारों के इक्के-दुक्के विद्रोह होते रहे।

ट्रावनकोर के महाराजा को सहायक सन्धि करने के लिये वैलेजली ने 1805 ई० में मजबूर कर दिया। महाराजा सन्धि की शर्तों से अप्रसन्न था। अंग्रेजी रेजीडेंट का व्यवहार भी धृष्टतापूर्ण था जिसके फलस्वरूप वहाँ के दीवान वेला टम्पी ने विद्रोह कर दिया। जिसका नायर बटालियन ने भी उसका समर्थन किया। ब्रिटिश को इस विद्रोह को दबाने के लिये एक बड़ी सेना भेजनी पड़ी। वहाबी आन्दोलन ने अंग्रेज प्रभुसत्ता को गम्भीर चुनौती प्रदान की। यह आन्दोलन उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे दशक से सातवें दशक तक चलता रहा। इस आन्दोलन के प्रवर्तक बरेली के सैयद अहमद (1786-1831) थे। इन पर अधिक प्रभाव दिल्ली के एक सन्त शाह वली उल्ला (1702-62) का था। सैयद अहमद वह हजरत मोहम्मद के काल के इस्लाम को पुनः स्थापित करना चाहते थे। जो वास्तव में यह पुनरुत्थान आन्दोलन था। 1857 ई० का यह संग्राम अकस्मात् न था। यह अग्नि 27 फरवरी 1857 ई० को बहरामपुर में प्रज्वलित हुई। असंतोष के परिणामस्वरूप उत्पन्न यह अग्नि अज्ञात एवं अदृश्य जनता के हृदय की गहराईयों में प्रविष्ट हो कर धीरे-धीरे ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध विचार एवं राजनीति के क्षेत्र में धधकने लगी। शुरु में यह एक मृतक संघर्ष के रूप में आयी। तत्पश्चात् पूर्णतः दर्दनाक समूह के घृणात्मक एवं आर्थिक शोषण के रूप में विस्तृत हुई। निसन्देह यह उत्कर्ष के रूप में प्रकट हुआ।

इस घटना को विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणोंसे देखा है। के० मालेसन ट्रेविलियन लारेन्स तथा होम्ब जैसे इतिहासकारों ने जो ब्रिटिश साम्राज्य के प्राकृतिक

पक्षपाती थे इसे केवल सैनिकों के विद्रोह की संज्ञा दी है, जो केवल सेना तक ही सीमित था और इसे जनसाधारण का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ। समकालीन कुछ भारतीयों के विचारों में भी यह एक सैनिक विद्रोह था। मुंही जीवनलाल और मुईनुद्दीन, दुर्गादास, बंधोपाध्याय और सर सैयद अहमद खॉं ने ऐसे ही विचार प्रकट किये। जिसे अन्य लोगों ने इसे ईसाइयों के विरुद्ध धार्मिक युद्ध की संज्ञा दी है अथवा श्वेत तथा काले लोगों के बीच सर्वश्रेष्ठता के लिए संघर्ष बतलाया कुछ अन्य लोग इसे पाश्चात्य तथा पूर्वी सभ्यता एवं संस्कृति के बीच संघर्ष कहते हैं तथा इसे अंग्रेजी राज्य को उखाड़ फेंकने के लिए हिन्दु-मुस्लिम षड्यन्त्र का नाम देते हैं। इसे कुछ राष्ट्रवादी भारतीय सुनियोजित राष्ट्रीय आन्दोलन कहते हैं। सरजान लारेन्स सीले के अनुसार यह केवल सैनिक विद्रोह था अन्यथा कुछ नहीं था। इसके अनुसार 1857 ई0 का विद्रोह एक पूर्णतया देशभक्ति रहित और स्वार्थी सैनिक विद्रोह था, जिसमें न कोई स्थानीय नेतृत्व ही था और न ही इसे सर्वसाधारण का समर्थन प्राप्त था। आर0 सी0 मजूमदार का मत है कि 1857 ई0 का विद्रोह स्वतन्त्रता संग्राम नहीं था। इस विद्रोह ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लिये थे। कुछ प्रदेशों में सैनिक विद्रोह अधिक था और इसमें कुछ असंतुष्ट व्यक्ति भी गड़बड़ी का लाभ उठाकर सम्मिलित हो गये। उनके अनुसार वे तत्व जो अंग्रेजों के विरुद्ध थे अधिकतर सैनिक ही थे। सैनिकों की शिकायतें उसी प्रकार की थीं जैसे कि पहले हुए सैनिक विप्लवों में थी। उनका कथन है कि विद्रोही राजनैतिक और धार्मिक कारणों में या आर्थिक लाभ से ही प्रेरित हुए थे। इन सैनिकों ने सागर, दमोह, जबलपुर, दिल्ली, बरेली, इलाहाबाद में लूटपाट की और इसमें भारतीय तथा यूरोपीय दोनों ही इसके शिकार हुए। मजूमदार इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सैनिकों के व्यवहार और आचरण में कुछ भी ऐसा नहीं था, जिससे हम यह विश्वास करें कि वे अपने देश प्रेम से प्रेरित हुए थे, या वे अंग्रेजों से इसलिये लड़ रहे थे कि वे राष्ट्र को स्वतन्त्र करा सकें।

डॉ0 एस0 एन0 सेन का कथन है कि यह स्वतन्त्रता संग्राम ही था उनका तर्क था कि क्रान्तियाँ प्रायः एक छोटे से वर्ग का कार्य होती हैं, जिसमें जनता का समर्थन होता भी है और नहीं भी। सैनिक विप्लव विद्रोह के रूप में आरम्भ हुआ और उसने उस समय राजनैतिक स्वरूप धारण कर लिया जब विद्रोहियों ने अपने आपको दिल्ली के राजा के अधीन होने की घोषणा कर दी और भूमिपतियों और बहुत-सी असैनिक जनसंख्या ने भी अपने आपको उसी के अधीन मान लिया जो युद्ध धर्म-रक्षा के लिये एक युद्ध के रूप में आरम्भ हुआ। उसने शीघ्र ही स्वतन्त्रता संघर्ष का रूप धारण कर लिया। और इसमें लेशमात्र या थोड़ा-सा भी सन्देह नहीं रहा कि विद्रोही विदेशी सरकार को समाप्त करना चाहते थे और उस प्राचीन

व्यवस्था को पुनः स्थापित करना चाहते थे जिसमें दिल्ली का सम्राट ही वास्तविक शक्ति हो।

निष्कर्ष

1857 ई0 का विद्रोह वास्तव में साम्राज्यवाद के विरुद्ध था। सैनिकों व असैनिकों ने साम्राज्यीय तत्वों को जड़ से उखाड़ फेंकने का प्रयास किया। इतिहास के सिंहावलोकन के रूप में डा0 सेन तथा डा0 चौधरी का विश्वास है कि यह स्वतन्त्रता संग्राम ही था। अंग्रेज इसे मात्र म्यूटनी ही मानते हैं लेकिन जिनके पास देखने की आँखें हैं और बोलने को जीभ है, वे इसे राष्ट्रीय क्रान्ति की शुरुआत मानते हैं जो भारत के लिये वरदान साबित हुआ। लार्ड सेलिसबरी भी इस बात को स्वीकार करने को तत्पर न थे कि इतना इनकी व्यापक विद्रोह केवल चर्बी वाले कारतूसों से ही हो सकता था, मान्यता थी कि यहाँ पर अनेक कारण मौजूद थे, जो बाहरी रूप से दिखायी नहीं देते थे। निश्चय ही इतने बड़े आन्दोलन के उत्थान के लिये अनेक कारण उत्तरदायी थे।

संदर्भ स्रोत :

01. प्रोफेसर विपिन चन्द – भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, 1987 पृ-12
02. विलियम वोट्ट्स – कंसीडरेशन ऑन इण्डियन अफैयर्स, लन्दन, 1977, पृ 72-74.
03. विनायक दामोदर सावरकर – 1857 का भारतीय स्वतन्त्र समर, पृ-21.
04. सुन्दरलाल, भारत में अंग्रेजी राज, प्रथम संस्करण भाग-2, 1982 इलाहाबाद, पृ-11.
05. वही, पृ. 42

